# *केंद्रीय बैंकों की बढ़ती हुई भूमिका**

*शक्तिकान्त दास*

आईएएस अधिकारियों के लिए मिड करियर कार्यक्रम के पंचम चरण के उद्घाटन हेतु यहाँ लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी में आकर मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है। इस महती प्रशिक्षण संस्था के साथ मेरी भी बहुत-सी सुखद यादें जुड़ी हुई हैं। मैं भी 1980 में आईएएस का कार्यग्रहण करने के बाद यहाँ आया था। मैं इस अकादमी के निदेशक श्री संजीव चोपड़ा और संकाय सदस्यों के प्रति कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने इस भव्य समारोह को संबोधित करने हेतु मुझे आमंत्रित किया।

मैं इस बारे में आश्वस्त हूँ कि आप में से प्रत्येक ने कठिन परिश्रम किया है और अपने लंबे करियर के मार्ग में कई मुकाम हासिल किए होंगे। आप इस समय जहाँ पर हैं, वह आपके करियर का एक महत्वपूर्ण स्थल है क्योंकि अब आप भारतीय प्रशासनिक संरचना में और भी उच्चतर भूमिकाओं और जिम्मेदारियों के लिए तैयारी कर रहे हैं। मैं समझता हूँ कि आप में से अधिकांश ने लगभग 28 से 31 वर्ष इस सेवा में गुजार दिये होंगे। अब आप केंद्र और राज्य सरकारों के शीर्षस्थ पदों पर जाने वाले होंगे। इन स्तरों पर आप पर नीति-निर्माण के साथ-साथ, प्रमुख कार्यक्रमों और स्कीमों के कार्यान्वयन को भी दिशा देने का दायित्व भी रहेगा। आपको विभिन्न नीतिगत विकल्पों के औचित्य को सावधानी से तौलते हुए और उनका आकलन करते हुए, सरकार को भावी दिशा पर सलाह देनी होगी। ऐसी उच्च पोजीशन में अपनी भूमिका निभाते हुए यह बहुत जरूरी है कि आप राष्ट्रपिता महात्मा गांधीजी की दो बातों का हमेशा ध्यान रखें: (i) "वह परिवर्तन स्वयं बनो जो तुम देखना चाहते हो।" और (ii) "आपने जिस किसी भी निर्धनतम और सबसे ज्यादा असहाय व्यक्ति को देखा हो, उसका चेहरा याद कीजिये और स्वयं से पूछिए कि जो कदम आप उठाने जा रहे हैं, क्या उसके लिए यह किसी भी प्रकार से उपयोगी होंगे?"

नेतृत्व के वरिष्ठ ओहदे में आपके पास इस राष्ट्र के लोगों के जीवन में एक बदलाव लाने की शक्ति रहेगी। साथ ही उन लोगों के जीवन में भी बदलाव लाने की शक्ति आपके पास रहेगी जिनका आप नेतृत्व करेंगे। तय कर लीजिये कि आप उनके विश्वसनीय सलाहकार बनें और अपनी टीम को मार्ग दिखाइये, प्रेरित कीजिये कि वे स्वयं को राष्ट्र की सेवा में समर्पित करें। मेरी आपको यही सलाह रहेगी कि आप विभिन्न स्तरों पर हमारी इस ब्यूरोक्रेसी के कार्यचालन में प्रणालीगत बदलावों का सूत्रपात करें ताकि लोक योजनाओं और नीतियों की डिलिवरी को और भी सुधारा जा सके। सर्वाधिक महत्वपूर्ण यह है कि पारदर्शिता लाने और भ्रष्टाचार को जड़ से मिटाने का काम आपकी सर्वोच्च प्राथमिकता बने।

किसी भी प्रकार का नीति-निरूपण एक प्रकार से सीखने की प्रक्रिया ही है, और नीति-निर्माता अतीत के अनुभवों से मार्गदर्शन प्राप्त करते हैं। इसलिए आज मैंने बोलने के लिए जो विषय चुना है, वह है- "केंद्रीय बैंकों की बढ़ती हुई भूमिका"।

**केंद्रीय बैंकों का आविर्भाव**

केंद्रीय बैंकिंग की शुरुआत काफी पहले 17वीं शताब्दी में सन 1668 में स्वीडन के रिक्सबैंक की स्थापना के साथ हुई, और तब से मौद्रिक प्राधिकरणों की भूमिका और कार्यचालनों में बहुत से बदलाव हो चुके हैं। प्राचीनतम केंद्रीय बैंकों में से कुछेक की स्थापना तो सरकारों को युद्धकालीन वित्तपोषण प्रदान करने और उनकी देनदारियों का प्रबंधन करने के लिए हुई थी। तब से इनकी भूमिका समय के साथ-साथ क्रमिक रूप से विकसित होती गई है। अब ये आधुनिक काल के ऐसे केंद्रीय बैंकों में रूपांतरित हो गए हैं, जो कीमत और वित्तीय स्थायित्व हासिल करते हुए संधारणीय आर्थिक संवृद्धि में मदद करने के लक्ष्य को सामने रखते हुए कार्य करते हैं।

भारत के मामले में हिल्टन-यंग आयोग (1926) ने भारतीय रिज़र्व बैंक की स्थापना के लिए अपनी सिफ़ारिश की थी, और इस बैंक को विशुद्ध केंद्रीय बैंकिंग के कार्य सौंपे जाने थे। लेकिन इसका भी काफी पुराना इतिहास है क्योंकि सन 1773 से ही भारत में ऐसी बैंकिंग संस्था स्थापित करने के प्रयास शुरू हो गए थे, जिसमें केंद्रीय बैंक के भी कुछ तत्व विद्यमान हों। परिणामस्वरूप रिज़र्व बैंक की स्थापना हुई और इसने अपना कार्य 01 अप्रैल, 1935 से आरंभ कर दिया। भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 के तहत इसके कार्यचालन को सांविधिक आधार प्रदान किया गया। मूल रूप में इसकी स्थापना शेयरधारकों के बैंक के रूप में हुई थी, तथा 1949 में इसका राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। इसके बाद समय के साथ-साथ इसकी भूमिका में बदलाव होते रहे और यह अर्थव्यवस्था के योजनाबद्ध विकास में सहायता देने से लेकर पूर्ण सेवादाता केंद्रीय बैंक के रूप में कार्यरत है।

* 17 जून, 2019 को लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी में श्री शक्तिकान्त दास, गवर्नर, भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा दिया गया भाषण

**विश्वव्यापी वित्तीय संकट के दौरान केंद्रीय बैंकों की भूमिका**

अब मैं संकट काल के दौरान केंद्रीय बैंकों की भूमिका पर विस्तार से कुछ कहना चाहूँगा। यद्यपि यह सत्य है कि संकट के कारण सुधार भी होते हैं, तथापि अनुभवों से तो यही दिखाई देता है कि अन्य बाहरी और जटिल कारक भावी वित्तीय संकटों की तरफ ले जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, सन 1997 में हुए पूर्वी-एशियाई संकट के दौरान बहुत-सी उदीयमान अर्थव्यवस्थाओं में विनियमन और पर्यवेक्षण की अपर्याप्तताओं से सीख लेने के बावजूद, सन 2008 में उन्नत देशों से आरंभ हुए विश्वव्यापी संकट को टाला नहीं जा सका। यद्यपि इस संकट के सर्वाधिक समसमान लक्षणों में चालू खाते में बड़े घाटे, राजकोषीय असंतुलन, अत्यधिक लीवरेज से हुई समष्टि-आर्थिक कमजोरियाँ और वित्तीय संस्थानों का अपर्याप्त विनियमन और पर्यवेक्षण ही थे, लेकिन कहीं ज्यादा प्रखरता और गहराई लिए हुए यह सचमुच विश्वव्यापी प्रकार का ही था।

विश्वव्यापी वित्तीय संकट का प्रभाव कई देशों में जिस तेजी से संचरित हुआ, उस गति को देखते हुए नीतिगत प्रतिसाद करने के लिए एक बार फिर केंद्रीय बैंक ही सामने आए। हालांकि इस बार वित्तीय बाज़ारों में आयी खलबली को रोकने के लिए केंद्रीय बैंकों द्वारा आदर्श मौद्रिक नीतिगत प्रतिसाद पर्याप्त नहीं थे। सन 2007 की गर्मियों में प्रमुख केंद्रीय बैंकों ने पारंपरिक मौद्रिक नीति उपायों को अपनाते हुए ब्याज दरों को कम कर दिया। लेकिन आर्थिक स्थिति धराशायी होती गई और केंद्रीय बैंकों को अपने पारंपरिक नीतिगत उपायों की *किट* में इतनी गुंजाइश नहीं बची कि वे अपने देश के वित्तीय स्थायित्व का बचाव कर सकें। इस प्रकार केंद्रीय बैंकों ने प्रणालीगत जोखिमों को काबू में करने के लिए अपारंपरिक नीतिगत उपायों के माध्यम से मात्रात्मक सहजता (Quantitative easing) लाने का उपाय अपनाते हुए बैंकिंग प्रणाली में भरोसा बढ़ाया और आर्थिक मंदी को नियंत्रित किया। लिखतों और परिचालन लक्ष्यों की दृष्टि से ये नीतिगत उपाय अपारंपरिक थे।[1] निसंदेह, केंद्रीय बैंकों ने जो मात्रात्मक सहजता अपनाई, वह केंद्रीय बैंकिंग के आधुनिक इतिहास में सर्वाधिक निर्भीक नीतिगत उपायों में से एक था। एक और अपारंपरिक उपाय था- नीतिगत ब्याज की ऋणात्मक दरों का प्रयोग, यद्यपि इसका प्रयोजन अलहदा उद्देश्यों को प्राप्त करना था। इन अपारंपरिक नीतिगत उपायों का प्रभाव अब सर्वविदित है क्योंकि अंतरराष्ट्रीय वित्तीय प्रणाली में सृजित चलनिधि की बड़ी मात्रा उदीयमान बाजार अर्थवयवस्थाओं (ईएमई) में प्रतिलाभ की प्रत्याशा में लगाई गई, जिससे इन अर्थव्यवस्थाओं में उत्थान और पतन चक्रों का सृजन हुआ।

*संकट के प्रति विनियामक प्रतिसाद*

पर्यवेक्षी और विनियामक परिप्रेक्ष्य में देखें तो इस संकट ने प्रणाली में कुछ अहम कमजोरियों को उजागर कर दिया। बैंकिंग पर्यवेक्षण पर बासेल समिति (बीसीबीएस) ने इन दुर्बलताओं को सारगर्भित रूप से प्रस्तुत किया है: तुलनपत्र में शामिल और इससे इतर लीवरेज की अत्यधिक मात्रा और उसके साथ पूंजी-आधार के स्तर और गुणवत्ता में क्रमिक गिरावट; चलनिधि का अपर्याप्त बफर; चक्रीयता-समर्थक डिलीवेरेजिंग प्रक्रिया; और जटिल लेनदेनों के व्यूह के माध्यम से प्रणालीबद्ध संस्थानों से अंतर्संबद्धता।[2] बासेल-III व्यवस्था के रूप में जिस विश्वव्यापी विनियमन प्रतिक्रिया ने आकार ग्रहण किया, उसका फोकस पूंजी के स्तर और गुणवत्ता में बढ़ोतरी करने, बैंक लीवेरेज पर काबू रखने, बैंक चलनिधि को सुधारने और चक्रीयता-समरथक तत्वों को परिसीमित करने के साथ-साथ, विनियमों में समष्टि-विवेकपूर्ण तत्वों को जोड़ने पर रहा।

पारंपरिक रूप से विवेकपूर्ण मार्ग अपनाते हुए बासेल-III सुधारों के कार्यान्वयन में भारत की प्रक्रिया समयबद्धता और अपेक्षाओं की दृष्टि से कुछ कठोर रही है। वित्तीय क्षेत्र के विनियमन हेतु भारतीय दृष्टिकोण को स्वदेशीय कारकों और नीतिगत प्राथमिकताओं का मार्गदर्शन बरकरार रहा। इस प्रकार भारतीय रिज़र्व बैंक ने पूंजी अपेक्षाओं, प्रति-चक्रीय पूंजी बफर, लीवेरेज अनुपात, चलनिधि कवरेज अनुपात और निवल स्थायी निधियाँ अनुपात की एक व्यवस्था लागू की है।[3] अभी हाल ही में बड़े जोखिमों के बारे में दिशानिर्देश जारी हुए, जो 01 अप्रैल, 2019 से लागू हो चुके हैं।

[1] उदाहरण के लिए वित्तीय संस्थानों को उधार देना, क्रेडिट बाज़ारों के लिए लक्ष्यबद्ध चलनिधि प्रावधान, लोक और निजी आस्तियों की एकमुश्त खरीद, सरकारी बॉन्ड की खरीद और फॉरवर्ड गाइडेन्स।

[2] बैंकिंग पर्यवेक्षण पर बासेल समिति (2010): 'बासेल-III : ए ग्लोबल रेग्युलेटरी फ्रेमवर्क फॉर मोर रेजिलिएंट बैंक्स एन्ड बैंकिंग सिस्टम्स', दिसंबर।

[3] पहली अप्रैल, 2020 से लागू किए जाने हैं।

भारत सहित सभी उदीयमान बाजार अर्थव्यवस्थाओं में दबाव का एक और सोपान 2013 के मध्य में टेपर-वार्ता अवधि के दौरान दिखाई दिया। भारतीय अर्थवयवस्था उस समय बहुत जर्जर थी क्योंकि लगभग 10 प्रतिशत की उच्च स्फीति दर थी और चालू खाते का बड़ा घाटा जीडीपी के 4.7 प्रतिशत पर था। रिज़र्व बैंक ने बहुत से नीतिगत उपायों का सहारा लिया जिसमें मौद्रिक कसाव, स्वर्ण आयात पर प्रतिबंध, सरकारी क्षेत्र की तेल कंपनियों के लिए विशेष डॉलर स्वैप विन्डो, विदेशी मुद्रा अनिवासी (बैंक) डिपॉजिट आकर्षित करने हेतु विशेष रियायती विन्डो, बैंकों द्वारा विदेशी उधार लेने की सीमा में बढ़ोतरी, और सरकारी ऋणों में विदेशी संस्थागत निवेश सीमाओं को बढ़ाना शामिल था।

**हमने क्या सीखा ?**

विश्वव्यापी अर्थव्यवस्था का सामना करने वाले इन नीतिगत मुद्दों के लिए कोई अद्वितीय समाधान नहीं है, तथापि हम तीन मोटे-मोटे निष्कर्ष निकाल सकते हैं:

(i) प्रथम, जैसा कि हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं, कि सामान्य समय के साथ-साथ संकट के समय केंद्रीय बैंकों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है। यद्यपि केंद्रीय बैंकों को सौंपे गए कार्य सामान्य और दबाव – दोनों ही अवधियों में मोटे तौर पर एक जैसे ही रहते हैं, तथापि संकट के काल में स्पर्धी उद्देश्यों और नीतिगत उपायों के चयन के साथ कुछ गुरुता जुड़ जाती है।

(ii) दूसरे यह कि केंद्रीय बैंकों द्वारा संवाद करना अहम हो जाता है, हालांकि संकट काल और सामान्य काल में यह अलग-अलग हो सकता है। इससे न केवल निर्णयों को अधिक पारदर्शी तरीके से संप्रेषित करने में मदद मिलती है बल्कि इससे केंद्रीय बैंकों के वर्तमान और भावी नीतिगत रुख का संकेत भी मिल जाता है। वस्तुतः संकट काल के दौरान केंद्रीय बैंकों द्वारा जो अपारंपरिक मौद्रिक उपाय किए गए, उन्होने मुख्यतया भरोसे और संकेतक चैनलों के माध्यम से काम किया। यूएस फेडरल रिज़र्व द्वारा 16 दिसंबर 2008 को जो वक्तव्य दिया गया, उसमें बाज़ारों के लिए स्पष्ट भावी मार्गदर्शन प्रदान किया गया। दूसरी तरफ यूएस फेड (जो टेपर टैंट्रम के नाम से विख्यात है) ने मई 2013 में मौद्रिक नीति को सामान्य बनाने का संकेत मात्र दिया और कई उदीयमान बाजार अर्थव्यवस्थाओं से पोर्टफोलियो का बहिर्वाह शुरू हो गया।[4] इससे इक्विटी, ऋण और मुद्रा बाज़ारों में अत्यधिक अस्थिरता आ गई। दरअसल, मौद्रिक नीति समायोजन को आंशिक रूप से हटाने के बारे में स्पष्ट अग्रिम संवाद के माध्यम से उदीयमान बाजार अर्थवयवस्थाओं में ऐसी अस्थिरताओं से बचा जा सकता था।

भारतीय संदर्भ में देखें तो वर्तमान और बदली हुई समष्टि-आर्थिक स्थिति के आकलन के आधार पर 'नीतिगत रेपो दर' और 'रुख' में परिवर्तन की दृष्टि से, रिज़र्व बैंक अपने मौद्रिक नीति निर्णयों पर संवाद करता है। मौद्रिक नीति पर अपने रुख को, 04 प्रतिशत $\pm$ 02 प्रतिशत के मध्यावधिक स्फीति लक्ष्य को प्राप्त करने के अधिदेश के अनुरूप रखते हुए- निरपेक्ष, समायोजक अथवा अनुसंशोधित कसावट के रूप में अभिव्यक्त किया जाता है, और साथ ही संवृद्धि के उद्देश्य को ध्यान में रखा जाता है। रिज़र्व बैंक अपने नीतिगत रुख को, इसका औचित्य बताते हुए, जानकारी देते हुए और विश्लेषण करते हुए स्पष्ट करता है ताकि बाजार के सहभागी और हितधारक बदलती हुई स्थिति के बारे में रिज़र्व बैंक के आकलन को और अधिक स्पष्ट ढंग से समझ सकें।

(iii) तीसरे यह कि यह विश्वव्यापी आर्थिक संकट इस तथ्य का भी प्रमाण था कि समष्टि-आर्थिक स्थायित्व के लिए विश्वव्यापी और स्वदेशीय- दोनों स्तरों पर नीतियों का समन्वय महत्वपूर्ण होता है। केंद्रीय बैंकों के बीच और स्वदेशीय कार्यक्षेत्र में मौद्रिक और राजकोषीय प्राधिकरणों के बीच केवल बेहतर समन्वय ही है, जिससे अतिशयता और न्यूनता के प्रतिकूल परिणामों पर काबू किया जा सकता है। तथापि यह तथ्य तो रह ही जाता है कि अधिकांश नीति-निर्माताओं (मौद्रिक और राजकोषीय) को स्वदेशीय अधिदेश मिले होते हैं, ऐसे में यदि अंतरराष्ट्रीय परिणाम स्वदेशीय नीतिगत प्राथमिकताओं के साथ संघर्षी प्रतीत हों तो अंतरराष्ट्रीय समन्वय को हासिल कर पाना कठिन

[4] मुख्यतया पाँच उदीयमान बाजार देशों, यथा- ब्राज़ील, भारत, इंडोनेशिया, दक्षिण अफ्रीका और तुर्की (जिन्हें 'पंच-भंगुर' (Fragile Five) का नाम दिया गया) से यह बहिर्वाह हुआ।

हो जाता है। इसलिए समन्वय की सफलता प्रमुख हितधारकों द्वारा नीतियों के निपुण अनुसंशोधन पर निर्भर करेगी।

**वर्तमान संदर्भ में समस्याएँ**

यहाँ तक कि विश्वव्यापी वित्तीय संकट का एक दशक से भी ज्यादा समय बीत जाने और टेपर टैनट्रम (नीतियों को शिथिल बनाने की प्रक्रिया) के छह वर्ष के बाद भी विश्वव्यापी अर्थव्यवस्था अभी तक सुस्थिर संवृद्धि-पथ पर नहीं है। सन 2017 में उठान के बाद तो यह प्रमाण मिल रहे हैं कि विश्वव्यापी संवृद्धि और व्यापार कमजोर पड़ते जा रहे हैं। व्यापार तनावों का कोई समाधान नहीं हो पाने और ब्रेक्सिट गतिविधियों से समूचे क्रियाव्यापार पर और भी गिरावट का जोखिम पड़ता दिखाई दे रहा है। यद्यपि सन 2019 के आरंभ में विश्व औद्योगिक उत्पादन और व्यापार की मात्रा में कमजोरी के संकेत दिखाई दिये, बहुत–से ओईसीडी देशों में अन्य कारोबारी अनुमान संकेतकों में भी नरमी रही है। इन कारकों को संज्ञान में लेते हुए अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक और ओईसीडी ने अपने नवीनतम आकलनों में सन 2019 के लिए संवृद्धि अनुमानों में संशोधन किया है। इसी प्रकार यह भी अनुमान लगाया गया है कि विश्वव्यापी व्यापार अगले दो वर्षों में मामूली गति से बढ़ेगा। यह अनुमान कई प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में निवेश के धीमे परिदृश्य के अनुरूप ही है।

यद्यपि अभी विश्व की अर्थव्यवस्था को संकट-पूर्व के संवृद्धि-पथ पर अभी आना बाकी है, तथापि भारत ने विगत तीन वर्ष में उपभोग और निवेश मांग द्वारा संचालित प्रबल संवृद्धि का प्रदर्शन बरकरार रखा हुआ है। हालांकि अभी हाल ही की अवधि में 2018-19 की दूसरी छमाही में हमने गति में कुछ कमी देखी है, क्योंकि संवृद्धि के कुछ प्रेरकों, खासकर निवेश और निर्यातों में धीमापन आया। प्रत्याशा है कि चुनावी मौसम के साथ जुड़ी राजनैतिक अस्थिरता के समापन के साथ ही आर्थिक सुधारों की निरंतरता हमारी अर्थव्यवस्था में कुछ संकेतकों में विद्यमान कमजोरी को दूर करने की तरफ ले जाएगी।

निवेश परिदृश्य को सुधारकर संवृद्धि में फिर से प्राण फूंकने के लिए अन्य बातों के साथ-साथ स्वस्थ वित्तीय क्षेत्र एक अहम भूमिका निभाता है। इस परिप्रेक्ष्य में रिज़र्व बैंक ने बैंकिंग और गैर-बैंकिंग दोनों ही क्षेत्रों में सुधार करने पर अत्यधिक नीतिगत ध्यान दिया है। बैंकिंग प्रणाली की आघात-सहनीयता को बढ़ाने के लिए हमने विनियामक और पर्यवेक्षी व्यवस्थाओं को मजबूत करने हेतु कई कदम उठाए हैं। दबावग्रस्त आस्तियों का निपटारा करने के लिए नए दिशानिर्देश जारी किए जा चुके हैं जो क्रेडिट संस्कृति में सुधारों को कायम रखेंगे।

गैर-बैंकिंग क्षेत्र में रिज़र्व बैंक हाल ही में दिशानिर्देशों के प्रारूप के साथ आया है, ताकि एनबीएफ़सी के लिए प्रबल चलनिधि व्यवस्था की जा सके। हम उनकी विनियामक और पर्यवेक्षी व्यवस्था को नए तरीके से देख रहे हैं। हमारा यह प्रयास है कि विनियमन और पर्यवेक्षण का इष्टतम स्तर बनाए रखें ताकि एनबीएफ़सी क्षेत्र को वित्तीय रूप से आघात-सहनीय और प्रबल बनाया जा सके। रिज़र्व बैंक इस क्षेत्र के क्रियाकलापों और कार्यनिष्पादन की देखरेख जारी रखेगा, जिसमें प्रमुख संस्थाओं और अन्य क्षेत्रों के साथ उनके अंतः-संबंधों पर फोकस रखा गया है। वित्तीय स्थायित्व को बरकरार रखने के लिए कोई भी जरूरी कदम उठाने में रिज़र्व बैंक संकोच नहीं करेगा।

हम शहरी सहकारी बैंकों की वाणिज्यिक व्यवहार्यता को सुधारने के लिए कई कदम उठा रहे हैं। इन उपायों में व्यापक स्तर पर शहरी सहकारी बैंकों के लिए छत्र-संगठन (Umbrella Organisation) और केंद्रीय धोखाधड़ी रजिस्ट्री (सेंट्रलाइज्ड फ्रॉड रजिस्ट्री) की स्थापना और गवर्नेंस में सुधारों के प्रस्ताव हैं। हम इस क्षेत्र में स्वैच्छिक समामेलन (Voluntary Merger) और समेकन को भी प्रोत्साहन दे रहे हैं ताकि परिचालन लागतों को कम किया जा सके और जोखिमों का विविधीकरण हो सके और पूंजी में किफायत रहे।

*मुद्रास्फीति और संवृद्धि के उद्देश्यों के बीच पारस्परिक क्रिया*

अब अंत में मैं भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 के तहत दिये गए अधिदेश के संदर्भ में रिज़र्व बैंक की भूमिका पर प्रकाश डालना चाहूँगा: "बैंक नोट निर्गमन को नियंत्रित करने और भारत में मौद्रिक स्थायित्व सुनिश्चित करने की दृष्टि से आरक्षित निधि रखना और सामान्यतया देश की मुद्रा और ऋण प्रणाली का इसके लाभ हेतु परिचालन" । इस अधिदेश की व्याख्या समय-समय पर कीमतों में स्थिरता, वित्तीय स्थायित्व और आर्थिक संवृद्धि को बरकरार रखने के रूप में की जाती रही है, जिसमें विद्यमान समष्टि-आर्थिक स्थितियों के सापेक्षतया आर्थिक संवृद्धि को भी ध्यान में रखा गया है। रिज़र्व बैंक की इस भूमिका का पुनर्कथन मई, 2016 में रिज़र्व बैंक अधिनियम में किए गए

संशोधन के अनुसार इस प्रकार किया गया, यथा- "मौद्रिक नीति का प्राथमिक उद्देश्य संवृद्धि के प्रयोजन को ध्यान में रखते हुए कीमत में स्थिरता बनाए रखना है।" इसलिए रिज़र्व बैंक में हमारा यही प्रयास है कि स्फीति पर लोचशील नियंत्रण के विधान के तहत कीमत स्थिरता सुनिश्चित करने के साथ-साथ, स्फीति को नियंत्रण में रखते हुए संवृद्धि पर फोकस करें।

स्फीति नियंत्रण की लोचशील व्यवस्था में मुद्रास्फीति और संवृद्धि उद्देश्यों के बीच एक सौम्य संतुलन रखने की आवश्यकता है। मुद्रास्फीति और संवृद्धि पर सापेक्षिक ज़ोर दिया जाना विद्यमान समष्टि-आर्थिक परिदृश्य, मुद्रास्फीति और संवृद्धि संबंधी दृष्टिकोण और प्राप्त हो रहे डेटा से मिलने वाले संकेतों पर निर्भर करता है। विश्वव्यापी वित्तीय संकट के बाद यह मान्यता बनी कि वित्तीय स्थायित्व के लिए केवल कीमतों की स्थिरता पर्याप्त नहीं हो सकती और इसलिए मौद्रिक नीति के लिए वित्तीय स्थायित्व एक अन्य अहम विचारधारा के रूप में सामने आया, हालांकि ज्यूरी गण अभी भी इस पर विचार कर रहे हैं कि इसे मौद्रिक नीति के सुस्पष्ट उद्देश्य में शामिल किया जाए अथवा नहीं। यह तथ्य तो रहेगा ही कि यद्यपि मौद्रिक नीति का फोकस मुख्यतया मुद्रास्फीति और संवृद्धि पर रहता है, तथापि इसकी आंतरिक विषयवस्तु हमेशा ही वित्तीय स्थायित्व ही रही है।

**समापक निष्कर्ष**

यद्यपि भारत इस विश्वव्यापी संकट से सापेक्षतया बचा ही रहा, लेकिन इसमें आत्मसंतोष की कोई गुंजाइश नहीं है। बहुत-सी बहुपक्षीय संस्थाओं के सदस्य के रूप में भारत ने जी-20 और बासेल समिति के तत्त्वावधान में अंतरराष्ट्रीय विनियामक और पर्यवेक्षी व्यवस्था के तहत संकट उपरांत सुधारों में सक्रिय सहभागिता की है। अंतरराष्ट्रीय मानकों और सर्वोत्तम परिपाटियों को चरणबद्ध रूप से, और जहां भी जरूरी हो, अपनी स्वदेशीय स्थितियों के अनुसार इनमें अनुसंशोधन करके इनको अंगीकृत करने के लिए भारत प्रतिबद्ध है।

रिज़र्व बैंक के दृष्टिकोण से देखें तो सभी हितधारकों के साथ प्रभावी संवाद और समन्वय पर हमारा फोकस निरंतर रहेगा ताकि कीमत स्थिरता, संवृद्धि और वित्तीय स्थायित्व के व्यापक समष्टि-आर्थिक उद्देश्यों को हासिल किया जा सके।